# जानकी

## (पुस्तक के कुछ अंश)

पूरा राजमहल सन्नाटे से भर गया था। राज दरबार में खड़ी सारी प्रजा टकटकी बाँधे दरबार के विशाल द्वार पर देख रही थी। रघुवीर का मुख मंडल भी प्रत्याशा के दीप से दमक रहा था। उनके शांत स्वभाव के प्रतिकूल प्रतिक्षण उनके मुख पर चंचलता और व्यग्रता के भाव आ-जा रहे थे। दरबार में खड़ा जन समूह भी उनकी इस व्याकुलता से अनभिज्ञ नहीं था। साँस रोके सब जानकी के पदचाप सुनने के लिए अधीर हो रहे थे जब जानकी की खड़ाऊँ ने अपने प्रवेश की उद्घोषणा की। जानकी की पदचाप रघुवीर को उतनी ही सुमधुर प्रतीत हुई जितनी वर्षों पहले मिथिला की पुष्प वाटिका में नुपुरों की रुन-झुन लगी थी। जिस प्रकार सखियों संग आती जानकी के एक-एक पगसे उठी एक-एक झनक हृदय में झनकार पैदा कर रही थी उसी प्रकार यह पदचाप हृदय के पटल पर सीधे प्रहार कर रही थी। वही गति, चाल में वही सौम्यता, उतनी ही गंभीरता, उतना ही सौष्ठव। यह मेरी जानकी ही तो है। आगे............

पूरा राजमहल सन्नाटे से भर गया था। राज दरबार में खड़ी सारी प्रजा टकटकी बाँधे दरबार के विशाल द्वार पर देख रही थी। रघुवीर का मुख मंडल भी प्रत्याशा के दीप से दमक रहा था। उनके शांत स्वभाव के प्रतिकूल प्रतिक्षण उनके मुख पर चंचलता और व्यग्रता के भाव आ-जा रहे थे। दरबार में खड़ा जन समूह भी उनकी इस व्याकुलता से अनभिज्ञ नहीं था। साँस रोके सब जानकी के पदचाप सुनने के लिए अधीर हो रहे थे जब जानकी की खड़ाऊँ ने अपने प्रवेश की उद्घोषणा की। जानकी की पदचाप रघुवीर को उतनी ही सुमधुर प्रतीत हुई जितनी वर्षों पहले मिथिला की पुष्प वाटिका में नुपुरों की रुन-झुन लगी थी। जिस प्रकार सखियों संग आती जानकी के एक-एक पगसे उठी एक-एक झनक हृदय में झनकार पैदा कर रही थी उसी प्रकार यह पदचाप हृदय के पटल पर सीधे प्रहार कर रही थी। वही गति, चाल में वही सौम्यता, उतनी ही गंभीरता, उतना ही सौष्ठव। यह मेरी जानकी ही तो है। और कोई हो ही नहीं सकता। अपलक, निर्निमेष, एकटक द्वार पर देखते खड़े थे रघुवीर। प्रजा को भी उनके न बैठने पर कोई आपत्ति या आश्चर्य नहीं था। वह भी उसी आशा-प्रत्याशा में हिचकोले ले रही थी।

उधर जानकी के हृदय की स्थिति भिन्न न थी। फूल सा कोमल जीवन जिनकी चरणधूलि पर समर्पित कर दिया, आज एकबार फिर उनके दर्शनों की पिपासा शांत होगी। जीवन सार्थक होगा। आज तपस्या पूर्ण होगी जब पूरे संसार के सामने मुझे वापस अपना लिया जाएगा। कितना समय बीत गया। उफ्फ मैं तो बूढ़ी हो चली। कैसी लगूँगी मैं उन्हें बिना श्रृंगार।जाने वो तत्परता कहाँ ओझल हो गई। किंतु उचित ही है, माता हूँ अब, मात्र अर्धांगिनी नहीं। कितने वर्ष लगा दिए आयोध्यावासियों ने मुझे समझने में। उन्होंने ने भी। कैसे नहीं अपनाता आयोध्या मुझे। अपने बालक के समान वात्सल्य दिया मैंने आयोध्या को। अपनी माता को कितने दिन कष्ट में देख सकता था आयोध्या।“

नववधू सा प्रकंपित हृदय लिए, जानकी सभा-मध्य पहुँच गई। अब भी अपलक, निर्निमेष, एकटक देखते खड़े थे रघुवीर। जैसे ही जानकी के पद सभा-मध्य स्थिर हुए कि रघुवीर के संयम की प्रत्यंचा टूट गई। वे दौड़कर मध्य का शेष अंतर पूरा कर लेना चाहते थे। और चाहते थे अपनी प्राणप्रिया को आजानुबाहु-पाश में बांध लेना कि पुन: ऐसा कोई क्षण न आए, पुन: ऐसा अंतर न पैदा हो। इसी क्रम वे एक पद आगे बढे ही थे कि अब तक एकटक भूमि ताकती जानकी ने चौंककर सिर उठाया और आँखों से आँखें मिलाई। रघुवीर भी ठहर गए जैसे जानकी की आँखों ने

लक्ष्मण रेखा खींचकर कहा हो “नहीं मर्यादा पुरोषत्तम।“ और रघुवीर की आँखें भी यह सुनकर मुस्कुरा दीं। हल्की सी स्मित रेखा तो यही बताती है। नयनों की भाषा भी अदभुत थी उस पल। एक युग की पीड़ा दोनों के नैनों में उतर आई। रघुवीर के नयन पूछते थे –“कैसी हो? धत्त यह भी क्या पूछता हूँ मैं? देख तो रहा ही हूँ कि वह, वह नहीं रही। ये क्या दशा है तुम्हारी, मेरी जानकी। म वह तो रही ही नहीं जिसे मैं मिथिला से लाया था। सिर से नख तक देखकर तो यही कह सकता हूँ मिथिलेश कुमारी।“

सिर एक ओर झुकाते हुए जानकी ऐसे मुस्कुराई जैसे कह रही हो “तुम भी तो दैत्यवंश निकंदन नहीं लगते। क्या अन्न-जल त्याग बैठे हो। तुम्हारी दशा पर तो हंसी-ठिठोली करने का मन होता है कि राजन तुम ऐसे हो तो प्रजा कैसी होगी।“

रघुवीर ने पलक झुकाई जैसे झेंप गए हों और फिर संभल कर वापस आँखों में आँखें डालकर जैसे दयनीय भाव से कह रहें हो “तुम से भिन्न और कैसा हो सकता हूँ।“

अब जानकी की झेंपने की बारी है। लज्जा स्वरूपा उसका रक्ताभ मुख झुक गया। पुन: संभलकर उसने भी आँखों में आँखें डालकर प्रत्युत्तर में जैसे कहा हो “मेरा तो जीवन ही अन्यथा हो गया। कोई उद्देश्य ही नहीं था। मैंने तो अंत कर दिया होता इसका यदि तुम्हारे ये दो उत्तराधिकारी तुम्हें न सौंपने होते।“

पहली बार रघुवीर का ध्यान जानकी से हटकर उसके दोनों ओर खड़े उन दो बालकों पर गया जो उन्हेंअपलक निहार रहे थे। रघुवीर की प्रशंसामय दृष्टिदोनों बालकों पर जा ठहरी। “कितने वीर बालक हैं? जानती हो जानकी इन्होंने तो हनुमान को बन्दी बना लिया।“जानकी आँखों ही आँखों में मुस्कुराई। इतना मुस्कुराई कि जैसे दंतपंक्ति की आभा झलक उठी हो और कह रही हो “हाँ। जानती हूँ। बहुत नटखट हैं। तुम्हारी शालीनता तो इन्हें छू भी नहीं गई। किंतु वीरता में तुम्हारा ही प्रतिरूप हैं। क्यों न हो। रघुकुल दीपक जो हैं।“

जानकी अभी गर्विता बनी खड़ी अपने दोनों पुत्रों को बारी-बारी से निहार ही रही थी कि रघुवीर के मुख-मंडल की छवि परिवर्तित होने लगी। जैसे स्वच्छ, धुले-खिले आकाश में अचानक ही घने-काले मेघों का आच्छादन होता है वैसे ही रघुवीर के मुख की कांति मलिन होने लगी। शंका फिर ईर्ष्या, फिर घृणा के भावों से मुख आच्छादित हो गया। जैसे पूछ रहे हों "क्या मेरे औरस हैं? क्या अब भी तुम अपने आप को पवित्र मानती हो? अभी भी मानोगी की तुमने कोई न कोई भूल वहाँ अवश्य की होगी"

जानकी की पुलकित काया अब अचानक भय और क्रोध से थर-थर काँप रही थी। "क्या अब भी तुम्हें मुझ पर संदेह है? तो मुझे यहाँ बुलाया ही क्यों? यह कैसा न्याय है तुम्हारा राजन। अग्नि परीक्षा तो मैं दे चुकीं हूँ। फिर कहते तो फिर दे देती। मगर तुमने तो मुझ से कुछ कहा ही नहीं। न मुझे कुछ कहने का अवसर ही दिया। बस वन-वन भटकने के लिए छोड़ दिया। ऐसा व्यवहार तो आयोध्या के किसी अपराधी के साथ भी नहीं होता। फिर मेरे साथ ही क्यों?"रघुवीर की भृकुटि तन गई। "तुम अपने आप को समझती क्या हो पाखंडी नारी। वह अग्नि परीक्षा कोई छलावा रही होगी। वरना यह तो संभव ही नहीं कि इतने दिन उसके पास रहने पर भी उसने कुछ न किया हो। मूर्ख समझती हो मुझे। भला यह समझाना चाहती हो कि बिल्ली भी दूध की रखवाली कर सकती है।"

जानकी कि निर्मल काया जैसे आत्मरक्षा में तनकर खड़ी हो गई। "यदि यही तुम्हारे सुविचार थे तो क्यों नहीं मुझेवन-वन भटकने दिया। क्यों भरी सभा में अपमानित करने को लाए? अगर कोई अग्नि परीक्षा भी तुम्हारी शंका नहीं मिटा सकती तो और कौन सा प्रमाण तुम्हें दूँ। क्या तुम मुझे कोई प्रमाण दे सकते हो कि मेरी अनुपस्थिति में तुमने सदैव अपना एकपत्नी धर्म निभाया।"रघुवीर की रगों आँखों में क्रोध उबलने लगा। धुँआ सा उठने लगा। एक कदम और नीचे उतर आए जैसे इस मूक वार्तालाप में कह रहे हों –"चुप निर्लज्ज।"स्थिति को बिगड़ते देख जानकी ने अपनी खींची तलवार वापस रख ली और मुखमंडल पर निरीहता लाते हुए नयनों से ही बोल उठीं"कब तक मुझसे प्रमाण माँगोगे। मेरी बातों का तो तुम्हें लेशमात्र भी भरोसा नहीं। उस युग के सब गवाहों का तुम और तुम्हारी सेना वध कर चुकी है। अब तो वह भी जीवित नहीं जिसको लेकर मुझ पर सदियों से तुम दोषारोपण करते आए हो। उसका तो तुम वध कर चुके हो। क्या अब भी तुम्हारी क्रोधाग्नि शांत नहीं होती।"

रघुवीर का मुख एकदम कड़ा हो गया जैसे चेहरे से घृणा और क्रोध की अग्नि साथ-साथ बरस रही हो और आँखों ही आँखों में वे कह रहे हों "वह मरा नहीं है। वह आज भी जीवितहै। वह जीवित है मेरे और तुम्हारे बीच। एक क्षण के लिए तुम्हारी विस्मृति भी संभव है जानकी, किंतु उसे एक क्षण के लिए भी अपने मानस के पटल से हटा नहीं पाया हूँ। उस ब्रह्म राक्षस का वध नहीं हुआ। वह अमर हो गया है मेरे जीवन की परिधि में। सदा-सदा के लिए।"फिर मुख के तनाव को तनिक ढीला करते हुए जैसे फुसफुसाए हों कि "क्या इतने दिनों में कोई संबंध नहीं हुआ तुम्हारे बीच? क्या मैं नहीं जानता कि वो विवाह से पहले भी तुम्हें पाना चाहता था? क्या मैं नहीं जानता की तुम्हें न पाने की निराशा में वह स्वयंवर होने से पहले ही लौट गया था? ऐसे में तुम्हीं बोलो कि मैं यह कैसे मान लूँ कि जो तुम इतने दिन उसके सन्निकट रहकर लौटी हो तो ऐसे ही लौट आई हो?"जहाँ रघुवीर का चेहरा एकदम अकड़ सा गया वहीं प्रतिक्रिया स्वरूप जानकी का रूप सिकुड़ सा गया किसी निरीह गौमाता समान और भौंहें ऊँची हो गई। उन ऊँची भौंहों के ऊपर उस दिव्य ललाट पर भी सैकडों लकीरें बन गईं। सैकडों लकीरें थीं जो इस प्रश्न से उठी उनकी पीड़ा की परिचायक थी परंतु आंखों मेंप्रश्न केवल एक ही था "क्या तुम्हें अभी भी ऐसा ही लगता है राम?"इसका प्रतिउत्तर भला रघुवीर क्या देते? एक पल के लिए हृदय ने साक्ष्य दिया कि प्राणों से भी प्रिय जानकी ही इस संसार में अटल सत्य की मूरत है। शेष सब छलावा है, माया है।" मगर दूसरे ही पल मस्तिष्क ने डाह की अग्नि वर्षा से राम को भिगो दिया। "इतने बलशाली पुरूष के सान्निध्य में रहकर आई हो जिसने तीनों लोक जीत लिए थे। कुछ तो उसने प्रभावित किया ही होगा। फिर जिसने तुम्हें सोने के शहर में कई परिचारिकाओं की सुविधा दी हो उसके आगे मुझ आततायी अत्याचारी को तुम भूल न जाओ, यह कैसे संभव है। अंतत: मैंने तुम्हें दिया ही क्या है। सदैव वन-वन भटकाया। अपनी सेवा करवाई। न कोई सुरक्षा दी। न कोई सुविधा। उल्टे ला-लाकर साधुओं को पटक दिया कि लो और सेवा करो। वहीं दूसरी ओर तुम्हारा पटरानी सा स्वागत हुआ। तुम्हारी सेवा में परिचारिकाएं तो परिचारिकाएं स्वयं वह भी नतमस्तक खड़ा रहा होगा। ऐसे में भला तुम कैसे न तुलना करती मुझ संग बिताएकष्टों और उन सुखद क्षणों का जब तुम मुझसे जुड़े प्रत्येक दायित्व से मुक्त थी।"

अब तो जानकी के लिए पीड़ा असह्यय सी थी। उसने महल की अटारी की ओर देखना प्रारंभ किया कि कहीं से कोई साक्ष्य टपक पड़े और इन विक्षिप्तता से भरे प्रश्नों की बौछारबन्द हो।

रघुवीर को इस उपेक्षा ने उद्‌विग्नता से भर दिया। सारी सीमाए लाँघते हुए तमतमाए चेहरे से ही वह भरी सभा में बोलउठे – "प्रमाण देना होगा। अपनी शुचिता का। मेरी प्रजा माँग रही है।"

मूक वार्तालाप अब मुखर हो चली थी। रघुवीर माँग रहे थे जो दिया नहीं जा सकता था। जानकी ने विवशतावश चारों ओर देखा। अपनी संतान समान प्रजा को मूक देख जानकी का हृदय दो टूक हो गया। सब स्तब्ध मुँह बाए खड़े थे। किसी के मुख में वाणी नहीं? क्या कोई इस अन्याय के विरुद्ध कुछ नहीं कहेगा? जानकी ने मन ही मन कहा धिक्कार है ऐसी प्रजा की माता और ऐसे राजा की पत्नी होने का। निर्णय लेती हुई जानकी ने अपने मुष्ठि और आँखें दोनों भींच लीं। फिर अपनी पूरी शक्ति लगा कर बोली -"नहीं राजन। अब कोई प्रमाण नहीं दूँगी। बहुत दे चुकी परीक्षा। बहुत कर चुकी तपस्या और मैं जितना दूँगी तुम उतना मांगोगे। अब मैं...प्रमाण मांगती हूँ। मैं प्रमाण मांगती हूँ इस प्रजा से मेरी संतान होने का। मैं प्रमाण मांगती हूँ तुम से राजन, मेरे पति होने का। बताओ राजन तुमने ऐसा क्या किया कि तुम्हें पति मानूँ। तुम्हें वनवास का दण्ड मिला तो मैं तुम्हारे साथ थी। मुझे वनवास का दंड मिला तो तुम कहाँ थे राजन। कहाँ था मेरा पति। तुम क्यों नहीं मेरी तरह राजपाट का सुख छोड़ मेरे साथ गए राजन? बोलो?"

सभा निस्तब्ध। रघुवीर निःशब्द।

जानकी प्रजा की ओर मुड़ी, “बोलो मेरी प्रजा। तुमने मेरे साथ क्या किया? क्या माता के साथ किया जाने वाला व्यवहार ही किया।क्या अपनी जनने वाली माता पर भी ऐसे ही निराधार लांछन लगाते हो। नहीं न।“

सभा में सर झुके हुए थे। कईयों के अश्रुओं से धरती आर्द्र थी।

"जब माता का गौरव दिया ही नहींतो क्या नाता, क्या सम्बन्ध तुम से। कोई नहीं न। फिर किस नाते प्रमाण मांगते हो। अपरिचितों से कोई प्रमाण मांगता है भला। बोलो किस सम्बन्ध से प्रमाण मांगते हो?बोलो?"

मरघट सी सभा शोचनीय खड़ी थी। नहीं दे पा रही थी उत्तर। तब जानकी रघुवीर की ओर मुड़ी। अट्टहास करने लगी। उस अट्टहास में किंचित विक्षिप्तता, किंचित पीड़ाका मिश्रण था। "लो राजन।

अपने दोनों उत्तराधिकारियों को संभालो। क्षमा राजन।क्षमा। आपके उत्तराधिकारी नहीं। आपके राज्य की एक अभागन साध्वी के पुत्रों को राज्य की प्रजा समझकर संभालोजिनकी माता की मृत्यु हो गई है। इन अनाथों के नाथ अब तुम्हीं हो राजन।"

रघुवीर की वाणी किसी आशंका से कंपकंपा रही थी। वाणी विरोध कर रही थी। परन्तु मुख पर सैकड़ों प्रश्नचिन्ह अंकित थे। जिन्हें पढ़कर जानकी बोली- "मेरा क्या है राजन। अब किसी से संबंध ही नहीं। माता-पिता ने तुम्हें सौंपकर हाथ जोड़ लिए। तुमने भाग्य को सौंप कर। जब इस धरा पर कोई काम ही नहीं बचा तो क्यों न लौट जाऊँ। लौट जाऊँ धरा के भीतर। जहाँ से आई थी।"

जानकी खोई-खोई हंस पड़ी। "जानते हो राजन। सबसे महत्वपूर्ण बात क्या है। वहां जाने पर मुझसे कोई प्रमाण नहीं मांगेगा। क्योंकि कोईमां प्रमाण नहीं मांगती।"

जानकी खंड-खंड मनोबल और खंड-खंड हृदयलिए धरा पर गिर पड़ी और मुख से मात्र यही उदगार थे, "माँ...माँ...कहाँ हो माँ। मुझे फिर अंक में लो माँ। माँ मेरी अच्छी माँ। तुम तो प्रमाण नहीं मांगोगी न माँ। माँ..माँ..माँ।"

जानकी सभा केमध्य मूर्छित पड़ी थी। रघुवीर सब सीमाएं लांघकर जानकी की ओर दौड़े। "नहीं जानकी। मैं कोई प्रमाण नहीं चाहता। मैं सदैव तुम्हारे ....।"

अभी तक रघुवीर न तो अपना कथन पूरा कर पाए थे न ही जानकी के निकट पहुँच पाए थे कि अचानक सिंहासन डोलने लगा। प्राचीर हिलने लगी। चारो ओर भयंकर कम्पन थी। प्रजा भूकंप से बचने के लिए बाहर की ओर भागी।सृष्टि थर-थर-थर-थर काँप रही थी। रघुवीर ने चेष्टा की कि जानकी को उठा,प्रांगण की ओर भागे। परंतु जानकी को उठाने के लिए उन्होंने जिस ओर भुजाएं बढ़ाई,उस ओर जनकी नहीं थी। जिस भूमि पर जानकी धराशायी थी वह धरा ही लुप्त थी।वहां एक अंतहीन विवर था। जो अब रघुवीर के मानस में भी था जिसे कोई नहीं भर सकता था। कभी नहीं भर सकता था।